बच्चों पर शारीरिक दण्ड

ऐतिहासिक व दार्शनिक पड़ताल

कंचन शर्मा

यह लेख दो भागों में है। पहला भाग विद्यालयों एवं घरों में बच्चों के साथ की जाने वाली शारीरिक हिंसा के उन आयामों की चर्चा करता है जिसकी जड़ें हमारी ऐतिहासिक या दार्शनिक मान्यताओं में निहित हैं। इन मान्यताओं पर इस अंक में चर्चा की गई है। लेख का दूसरा भाग अगले अंक में प्रकाशित होगा जिसमें शारीरिक दण्ड के सामाजिक व सांस्कृतिक आयामों की पड़ताल की गई है। सं.

शिक्षा के अधिकार में निहित बच्चों को शारीरिक दण्ड देने पर प्रतिबन्ध के बावजूद आज भी शिक्षा संस्थाओं और घरों में बच्चों के साथ इस प्रकार की हिंसा अकसर की जाती है। यह एक ऐसा सामाजिक कुटेव है जिसकी नीतिगत आलोचना भी होती है और जिसके ऊपर मीडिया भी प्रकाश डालता रहता है, लेकिन इसका असर न तो अभिभावकों पर पड़ता है और न ही स्कूल प्रशासन इससे प्रभावित होता है। ये दोनों ही दायरे इस आलोचना की अनसुनी करने और किसी तरह ख़बरों को दबाने के लिए तत्पर रहते हैं। प्रश्न यह है कि हमारे अभिभावकों, शिक्षकों और शिक्षा संस्थाओं के संचालकों के मानस पर वे कौन-सी मान्यताएँ हावी हैं जो प्रतिबन्ध के बाद भी बच्चों पर हिंसा करते रहने की बाध्यता पैदा करती हैं? इसी के साथ यह ग़ौर करना भी ज़रूरी है कि इन मान्यताओं के स्रोत कहाँ स्थित हैं?

बच्चों पर हिंसा की परम्परा व संस्कृति को मान्यता देने वाली इस समस्या की जड़ तक पहुँचने के लिए शास्त्रोक्त मान्यताओं से लेकर औपनिवेशिक शिक्षा व्यवस्था तक अध्ययन आवश्यक है। बिना इसके, समस्या के पीछे की ऐतिहासिक मान्यताओं को चिह्नित नहीं किया जा सकता। गढ़वाल विश्वविद्यालय में संस्कृत विभाग के पूर्व अध्यक्ष कृष्णकुमार (1999) के अनुसार, शास्त्रों के कई उद्धरण पुष्टि करते हैं कि अतीत में शिक्षा के एक अंग के रूप में शारीरिक दण्ड को मान्यता मिली हुई थी। इसका प्रमाण अनेक शास्त्रकारों के इस कथन में देखा जा सकता है कि “अधिक लाड़-प्यार करने से बच्चे बिगड़ जाते हैं। अतः उन्हें कठोर अनुशासन में रखने की आवश्यकता है। ग़लत आचरण करने पर उनको दण्डित करना चाहिए। आचार्य जब दण्डित भी करते हैं तो उनके हाथ अमृत से भरे होते हैं, विष से नहीं। लाड़ करने से छात्र में अवगुण बढ़ते हैं तथा दण्ड का भय उनमें गुणों का सृजन करता है और वे इससे ग़लत मार्ग पर जाने से डरते हैं।”[1] शास्त्रों में गुरु द्वारा शिष्य को दी जा सकने वाली प्रताड़ना की पूरी संहिता ही दर्ज है। आपस्तम्ब धर्मसूत्र की मान्यता है कि आचार्य को विद्या का अवदान देते समय शिष्य के प्रति स्नेह का व्यवहार तो करना चाहिए, परन्तु स्नेहमय व्यवहार का अर्थ यह नहीं है कि शिष्य उद्दण्ड हो जाए। शिष्य को सुधारने के लिए आचार्य उसको यथोचित तथा कठोर दण्ड दे सकता है। शारीरिक दण्ड के सम्बन्ध में शास्त्रकारों का कहना है कि

1. कृष्णकुमार (1999), *प्राचीन भारत की शिक्षा पद्धति*, नई दिल्ली : श्री सरस्वती सदन प्रकाशन, पृ. 68-70.

शिष्य को ताड़ना एक अन्तिम उपाय के रूप में अपनाया जाना चाहिए। गुरु पहले शिष्य को समझाए, भय दिखाए, भोजन बन्द कर दे, ठण्डे जल में गोते लगवाए या अपने सामने ही संस्था से निष्कासित कर दे। शिष्य द्वारा गम्भीर अपराध करने पर उसपर रस्सी या बाँस की खपच्ची से प्रहार किया जाए। यह प्रहार शरीर के पृष्ठ भाग पर करना चाहिए, सिर या कोमल अंगों पर नहीं।

एक अन्य स्थान पर कृष्णकुमार बताते हैं कि गौतम के कथन के अनुसार, आचार्यों को सामान्यतः शिष्यों को शारीरिक दण्ड दिए बिना ही अनुशासन में रखना चाहिए। यदि समझाने या डराने-धमकाने का शिष्य पर प्रभाव न हो तो रस्सी या बाँस की खपच्ची से प्रहार करना चाहिए। ध्यान रहे कि उच्च शिक्षा के लिए छात्रों का आचार्य कुल में प्रवेश होता था। उस समय वे यौवन की अवस्था में पदार्पण कर रहे होते थे। अनेक बार किसी मोहवश, अज्ञानवश या काम के वशीभूत होकर वे गुरु-पत्नियों के प्रति आकृष्ट हो जाते होंगे। गौतम ने इस व्यभिचारजन्य अपराध के लिए अति कठोर दण्ड की व्यवस्था की थी। यदि कोई छात्र अपने गुरु की शैया का अतिक्रमण करता है, उसकी पत्नी के साथ रमण करता है, तो उसको तप्त लोहे की शैया पर लिटाना चाहिए अथवा गर्म लोहे की स्त्री-मूर्ति का आलिंगन कराना चाहिए। इस अपराध के दण्ड की भीषणता उस समय बहुत बढ़ जाती थी जब ऐसे अपराधी शिष्य को अपने शिश्न और वृषण को काटकर व हाथों में पकड़कर दक्षिण दिशा की ओर तब तक जाना पड़ता था जब तक वह गिरकर प्राण न त्याग दे।[2]

इसी प्रकार रश्मि श्रीवास्तव (2008) भी बताती हैं कि प्राचीन शिक्षा व्यवस्था में दण्ड से सम्बन्धित बहुत कड़े नियम देखने को मिलते हैं। अपराध की पुनरावृत्ति न हो, इस उद्देश्य से गुरु द्वारा छात्र को शारीरिक दण्ड देने के अधिकार प्रदान किए गए हैं। यहाँ यह रेखांकित करना भी आवश्यक है कि शास्त्रों में शिष्य के साथ सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार पर भी बल दिया गया है। जैसे- मनु का कथन है कि बिना यातना दिए लोगों को उनके कल्याण की बातें समझाई जानी चाहिए और ऐसा करते हुए मधुर वचनों का प्रयोग करना उचित होगा। लेकिन शिक्षा के सन्दर्भ में मनु कहते हैं कि शिष्य द्वारा अपराध किए जाने पर गुरु उसे दण्ड दे सकता है।[3] बी पी भट्टाचार्य (1938) कहते हैं कि चाणक्य ने बच्चों को दण्ड देने की आयु भी निर्धारित कर दी है। कौटिल्य की मान्यता थी कि पाँच वर्ष तक बच्चों को आनन्द प्राप्त करने दो, दस वर्ष तक की आयु तक उसे दण्ड के ज़रिए अनुशासित करो और पन्द्रह वर्ष का हो जाने पर उसके साथ मित्रवत व्यवहार करो। इसी के साथ 'चाणक्य नीतिशास्त्र' के पाठ दो में कहा गया है कि "बहुत-सी बुरी आदतें अति लाड़-प्यार से उत्पन्न होती हैं, जबकि बहुत-सी अच्छी आदतें दण्ड से पैदा की जा सकती हैं, इसीलिए अपने शिष्य को भी अपने पुत्र की भाँति पीटना चाहिए। उसे अधिक लाड़-प्यार मत दो, उसे प्रत्यक्ष रूप से एक शिक्षक-छात्र व्यवस्था में नियमबद्ध रखो।"[4]

मनु का कथन है कि बिना यातना दिए लोगों को उनके कल्याण की बातें समझाई जानी चाहिए और ऐसा करते हुए मधुर वचनों का प्रयोग करना उचित होगा। लेकिन शिक्षा के सन्दर्भ में मनु कहते हैं कि शिष्य द्वारा अपराध किए जाने पर गुरु उसे दण्ड दे सकता है। बी पी भट्टाचार्य (1938) कहते हैं कि चाणक्य ने बच्चों को दण्ड देने की आयु भी निर्धारित कर दी है।

2. कृष्णकुमार (1999), *प्राचीन भारत की शिक्षा पद्धति*, नई दिल्ली: श्री सरस्वती सदन प्रकाशन, पृ. 68-70.

3. रश्मि श्रीवास्तव (2008), *'भारत में प्राचीन शिक्षा प्रणाली में अनुशासन का मनोवैज्ञानिक पक्ष तथा उसकी प्रासंगिकता'*, परिप्रेक्ष्य, न्यूपा, दिसम्बर, अंक 3, पृ. 15-26.

मुस्लिम काल में प्रचलित मान्यताओं पर नज़र डालते हुए एस पी चौबे (2006) बताते हैं कि इस काल में भी छात्रों को अनुशासित करने हेतु कई उपाय अपनाए जाते थे, जिनमें शारीरिक दण्ड देना शामिल था। विद्यार्थी अधिकतर अनुशासित थे, किन्तु सभी की मनोवृत्ति समान नहीं थी। बच्चों की मनोवृत्ति के वास्तविक ज्ञान के लिए उस समय मनोविज्ञान विकसित नहीं था। अतः शारीरिक दण्ड द्वारा बच्चों की मनोवृत्तियों को दबाने का प्रयास किया जाता था। शिक्षक स्वेच्छया से बच्चों को दण्ड देते थे और उसका मापदण्ड शिक्षक की मानसिक अवस्था हुआ करती थी। अत्यन्त क्रोधित होने पर कभी-कभी शिक्षक बच्चों को कपड़े में बाँधकर टँगवा देते थे। साधारणतः छोटे-छोटे अपराधों पर बेंत अथवा कोड़े से मारा जाता था। इसके अतिरिक्त मुर्गा बनाना, दिन भर खड़े रखना आदि भी प्रचलित दण्ड थे।[5]

> मुस्लिम काल में प्रचलित मान्यताओं पर नज़र डालते हुए एस.पी.चौबे (2006) बताते हैं कि इस काल में भी छात्रों को अनुशासित करने हेतु कई उपाय अपनाए जाते थे, जिनमें शारीरिक दण्ड देना शामिल था। विद्यार्थी अधिकतर अनुशासित थे, किन्तु सभी की मनोवृत्ति समान नहीं थी। बच्चों की मनोवृत्ति के वास्तविक ज्ञान के लिए उस समय मनोविज्ञान विकसित नहीं था।

इनके अतिरिक्त कई ऐसे उद्धरण भी मिलते हैं जिनसे शिक्षक व छात्रों के मध्य पदसोपानीय अन्तर स्पष्ट होता है। जब कभी कर्तव्य निर्वाह में चयन का प्रश्न आता है तब माता-पिता, गुरु, देवता के प्रति कर्तव्य निर्वहन के लिए प्रेरित किया जाता है। ऐसी मान्यता थी कि एक बच्चे को सबसे पहले अपनी माता के प्रति अपने कर्तव्यों की पूर्ति करनी चाहिए, फिर पिता, उसके पश्चात गुरु व अन्त में देवता के प्रति। इस प्रकार की पदसोपानीयता गुरु को एक विशेष दर्जे से सम्पन्न कर देती है। जे एस राजपूत और के वालिया (2001) के अनुसार, गुरु के इस उच्च स्थान की स्वीकृति व समाज में शक्ति के विभाजन में गुरु को मिला उच्च स्थान ही गुरु द्वारा शारीरिक दण्ड के प्रयोग को मान्य बना देता है।[6]

ईसाई ग्रंथ में ऐसे उद्धरण मिलते हैं जो बालक को अनुशासित करने की दिशा में दण्ड को शामिल करने का सुझाव देते हैं। मसलन, एक स्थान पर ये शास्त्र कहता है कि छड़ी और फटकार की मदद से बालक को ज्ञानी बनाया जा सकता है पर बच्चे को उसके भरोसे छोड़ना उसकी माता के लिए शर्म की बात है। एक अन्य स्थान पर कहा गया है बच्चे को अनुशासित किए बिना न छोड़ें, इसके लिए छड़ी का प्रयोग भी किया जा सकता है। इसके प्रयोग से उसकी जान नहीं जाएगी पर छड़ी का प्रयोग उसकी आत्मा को बुराइयों से बचा लेगा। इसी तरह एक अन्य स्थान पर कहा गया है, "एक बच्चे के हृदय में मूर्खता बसी होती है लेकिन छड़ी की सहायता से उसे सुधार की दिशा में ले जाया जा सकता है।" (एच.ए. फॉल 1841)

चूँकि मैं इस समस्या की जड़ में उपनिवेशवादी सोच व उस काल में स्थापित मूल्यों की भूमिका भी देखती हूँ, इसलिए इस दौरान हुए बदलावों व उनसे स्थापित प्रतिमानों पर विचार किया जाना ज़रूरी है। मसलन, क़ाज़ी शहीदुल्ला (1996) अपने लेख में बताते हैं कि 1854 के पश्चात शिक्षा के क्षेत्र

4. Bhattacharya, B P (1938), *'Children and Punishment in Indian'*, Journal of Pediatrics, Vol. 5, No.1, pp. 13-15.

5. एस पी चौबे (1990), *'शिक्षा के दार्शनिक, ऐतिहासिक और समाजशास्त्रीय आधार'*, नई दिल्ली : इण्टरनेशनल पब्लिशिंग

6. Rajput, J S, & Walia, K (2001), *'Reforms in teacher education'*, Journal of Educational Change, Vol. 2, No. 3, pp. 239-256.

7. Falk, HA (1841), *Corporal punishment*, New York: Bureau of publications, Teacher College, Columbia University.

में अनेक बदलाव लाए गए। निश्चित पाठ्यक्रम, पाठ्यपुस्तकें, विद्यालय का समय, निश्चित मूल्यांकन विधि व मासिक वेतन पर अध्यापकों की नियुक्ति जैसे बदलाव लाकर प्राचीन भारतीय शिक्षा व्यवस्था के स्थान पर नई शिक्षा व्यवस्था लागू की गई। इस नई शिक्षा व्यवस्था के मुताबिक़ अंग्रेज़ों के लिए यह आवश्यक हो गया कि वे भारतीय छात्र-छात्राओं में उन मूल्यों, विश्वासों, तौर-तरीक़ों का समावेश करें जो बरतानवी परम्परा के हिसाब से ठीक हों। ऐसी स्थिति में विद्यालय एक नए रूप में उभरकर सामने आए। अब छात्रों को एक निश्चित समय पर आना और एक विशेष तरीक़े से व्यवहार करना सीखना था।[8] चूँकि भारतीय बच्चों को बरतानवी मूल्यों के अनुसार बनाया जाना ज़रूरी था, इसलिए बच्चों से नई ग़ल्तियाँ होने के अन्देशे भी बढ़ते चले गए। परिणाम स्वरूप उन्हें दण्ड देने के अवसरों में भी बढ़ोतरी हुई। ज़ाहिर है कि भारतीय विद्यालयों में अनुशासन व शारीरिक दण्ड की परम्परा के विकास में इन शिक्षा सम्बन्धी उपनिवेशवादी आग्रहों की भी उल्लेखनीय भूमिका रही है।

औपनिवेशिक शिक्षा व्यवस्था ने भारतीय बच्चों के संसार को बदलकर रख दिया। इस सन्दर्भ में जूडिथ वाल्श (2003) कहती हैं, उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में बरतानवी भारत में अंग्रेज़ी भाषा की शिक्षा ने उदीयमान भारतीय सम्भ्रान्त वर्ग को संरचना और बचपन के सन्दर्भ में बड़े स्तर पर बदल डाला... (दरअसल) भारत की धार्मिक, जातीय और क्षेत्रीय विविधता के परिणाम स्वरूप यहाँ 'बचपन' के अनेक प्रकार रहे हैं।

औपनिवेशिक शिक्षा व्यवस्था ने भारतीय बच्चों के संसार को बदलकर रख दिया। इस सन्दर्भ में जूडिथ वाल्श (2003) कहती हैं, "उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में बरतानवी भारत में अंग्रेज़ी भाषा की शिक्षा ने उदीयमान भारतीय सम्भ्रान्त वर्ग को संरचना और बचपन के सन्दर्भ में बड़े स्तर पर बदल डाला... (दरअसल) भारत की धार्मिक, जातीय और क्षेत्रीय विविधता के परिणाम स्वरूप यहाँ 'बचपन' के अनेक प्रकार रहे हैं। इनके तहत भारतीय बच्चों को भावी वयस्क के रूप में विकसित होने के लिए प्रोत्साहित किया जाता था। इसमें बच्चों को परिवार और समुदाय की माँगों व दायित्वों के प्रति अधिक उत्तरदायी बनाने पर बल देना निहित था। नतीजतन, भारतीय बच्चा 'पारिवारिक स्व' के रूप में स्वयं को विकसित करता था। लेकिन, अंग्रेज़ी भाषा में शिक्षा की संरचना ने बच्चों के जीने के तरीक़ों पर प्रभाव डाला और साथ ही बचपन की प्रक्रिया को पुनः आकार प्रदान किया। जहाँ भारतीय बचपन एक निश्चित समाज या गाँव के भीतर अपनी पहचान पाता था, अब अंग्रेज़ी शिक्षा की चाह ने एक विद्यार्थी के लिए यह आवश्यक कर दिया कि वह अपने परिवार और गाँव से दूर यात्रा करे व वहीं बस जाए। इस प्रकार बदलती परिस्थितियों ने बच्चों के जीवन में सामाजिक प्राधिकार की अपेक्षा स्कूली प्राधिकार और सम्बन्धित मूल्यों को महत्त्वपूर्ण बना दिया।"[9]

उपनिवेशवादी शिक्षा के यह रूप मात्र भारत तक ही सीमित नहीं थे, बल्कि अन्य उपनिवेशों को भी उनसे गुज़रना पड़ रहा था। मसलन एम कैमरॉन (2006) केन्या के विद्यालयों में छात्र / छात्राओं को दिए जाने वाले शारीरिक दण्ड का उपनिवेशवाद से सम्बन्ध स्थापित करते हुए

8. Shahidullah, K (1996),*'The Purpose and Impact of Government Policy on PathshalaGurumohashoys in Nineteenth-Century Bengal'*, The Transmission of Knowledge in South Asia: Essays on Education, Religion, History, and Politics, pp. 119-134.

9. Walsh,JE(2003), *'English Education and Indian Childhood during the Raj, 1850-1947',* Education Dialogue, Vol. 1 (1), Monsoon, pp. 35-75.

10. Cameron, M (2006), *'Managing School Discipline andImplications for School Social Workers: A Review of theLiterature'*, National Association of Social Workers, Vol. 28(4), pp. 219-228.

कहते हैं, "केन्या के विद्यालयों में ज़ारी शारीरिक दण्ड की जड़ें बरतानवी उपनिवेशवाद में छिपी हैं,जहाँ निश्चित नियम-क़ानूनों का उल्लंघन या उनका अच्छा निष्पादन न करने पर बच्चों को अनुशासन में लाने के लिए छड़ी का बड़े स्तर पर प्रयोग किया जाता था। विद्यालयों में अनुशासन बनाए रखने के लिए शारीरिक दण्ड को क़ानूनन और सांस्कृतिक तौर पर स्वीकृति का यही स्रोत था।"[10]

इसी प्रकार रॉबर्ट टर्नर (1989) ने अमेरिकी विद्यालयों में शारीरिक दण्ड के प्रयोग की जड़ों की तलाश इतिहास में की है। उनके अनुसार, "1930 में जब अमेरिका के विद्यालयों में शारीरिक दण्ड के मुद्दे को उठाया गया तब वहाँ यह कोई नया मुद्दा नहीं था। अमेरिका में यह विश्वास किया जाता था कि इण्डियंस को यूरोपियन मानदण्डों के अनुसार व्यवहार का अनुकूलन करने की आवश्यकता है। आधारभूत अवधारणा यह थी कि स्थानीय बच्चे (इण्डियंस) तत्परता से अपने व्यवहार को बदल पाने में असमर्थ हैं, अतः शारीरिक दण्ड के द्वारा अनुशासन की स्थापना न्यायपूर्ण है। ऐतिहासिक रूप से शारीरिक दण्ड को यह कहते हुए समर्थन दिया जाता था कि यह शैक्षिक प्रशिक्षण, आज्ञाकारिता तथा समाज में नैतिक ताना-बाना बनाए रखने में सहायक है।

> रॉबर्ट टर्नर (1989) ने अमेरिकी विद्यालयों में शारीरिक दण्ड के प्रयोग की जड़ों की तलाश इतिहास में की है। उनके अनुसार, 1930 में जब अमेरिका के विद्यालयों में शारीरिक दण्ड के मुद्दे को उठाया गया तब वहाँ यह कोई नया मुद्दा नहीं था। अमेरिका में यह विश्वास किया जाता था कि इण्डियंस को यूरोपियन मानदण्डों के अनुसार व्यवहार का अनुकूलन करने की आवश्यकता है।

लेखक बताता है कि शारीरिक दण्ड को इण्डियंस के लिए खोले गए विद्यालयों में यूरोपीय परम्परा से लिया गया, जिसे यूरोप ने अमेरिका से ग्रहण किया गया था। अमेरिका में एक पुराने व प्रभावी तरीक़े के तौर पर शारीरिक दण्ड घरों में व विद्यालयों में अनुशासन बनाए रखने के लिए दिया जाता था। अमेरिकी इण्डियन बच्चों को अनुशासित करने के लिए फोनिक्स इण्डियन स्कूल में एक जेल भी थी। इस विषय में 1894 में विद्यालय अधीक्षक ने अपनी रिपोर्ट में भी लिखा था। अधीक्षक बर्न्स ने जानकारी दी है कि दण्ड के रूप में बच्चों को जेल में केवल रोटी व पानी के भरोसे हफ़्तों तक बन्द रखा जाता था। जब ये बच्चे रिहा होते तो कंकाल की भाँति दिखते। इस कारण कई बच्चे बीमार हो जाते और कई की तो मृत्यु तक हो जाती थी। बर्न्स ने सिफ़ारिश की थी कि इन स्कूलों के प्रभारी अमेरिकी इण्डियन बच्चों को सँभालने के लिए अनुपयुक्त थे। उन्होंने इसके खिलाफ़ छानबीन करने की बात भी कही। इसके उत्तर में प्रभारी की तरफ़ से दलील दी गई कि विद्यालय पहले ही अनुशासनहीनता झेल रहे हैं। ऐसे में जेल के बिना उन्हें यह चुनाव करना होगा कि या तो वे विद्यार्थियों को अनुशासनहीन बनने दें या उन्हें राज्य के सुधारगृहों में भेजने को तैयार रहें, जहाँ उनके अपराधीकरण का काफ़ी अन्देशा होगा।"[11]

इस पर अनेक अध्ययन हुए हैं कि यह मान्यताएँ किस प्रकार असल जीवन में शिक्षकों की सोच का हिस्सा बन जाती हैं। मसलन, साथ चेरिटेबल ट्रस्ट (2006) ने अपने शोध अध्ययन में बताया है कि भारतीय विद्यालयों और घरों में शारीरिक दण्ड को जीवनशैली के रूप में

---

11. Trennert, R A (1989), *'Corporal Punishment and the Politics of Indian Reform',* History of Education Quarterly, 29(4), 595-619.

12. Saath Charitable Trust/Plan International, India (2006), *'Impact of corporal punishment on school children: A research study - Final Report'*

स्वीकृति प्राप्त है। इसमें सामान्य रूप से माना जाता है कि शारीरिक दण्ड बच्चों के पालन-पोषण का महत्त्वपूर्ण भाग है। दूसरा,बच्चे मारपीट के माध्यम से ही अध्यापकों व अभिभावकों का आदर करना, नियमों का पालन करना और मेहनत करना सीखते हैं। बिना शारीरिक दण्ड के बच्चे बर्बाद व अनुशासनहीन हो जाएँगे।"[12] दुबनोस्की वग़ैरह (1983) ने शिक्षकों के मानस में अनुशासन और दण्ड के आपसी रिश्ते का अध्ययन किया है। इसके अनुसार शारीरिक दण्ड को प्रस्तावित करने वाले यह मानते हैं कि शारीरिक दण्ड अमान्य व्यवहार में कमी लाता है,सीखने में सहायक होता है, चरित्र निर्माण करता है, प्राधिकारी शक्ति, प्रशासन, नियमों के प्रति सम्मान का भाव आदि सिखाता है। वे मानते हैं कि शारीरिक दण्ड से तुरन्त एवं मापनीय परिणाम मिल सकते हैं।[13]

दक्षिण अफ्रीका के प्राथमिक विद्यालयों में किए गए अनुसंधान में पाया गया कि अध्यापक शारीरिक दण्ड के बिना अनुशासन बनाए रखने में ख़ुद को असमर्थ महसूस करते थे। इसके साथ ही अध्यापकों ने यह भी कहा कि बिना दण्ड के बच्चे शिक्षकों के प्रति अनादर का भाव रखेंगे और अध्यापक बच्चों में कड़ी मेहनत करने के अनुशासन का विकास करने में भी असफल हो जाएँगे। शिक्षकों का विश्वास था कि अन्य तरीक़ों की तुलना में (जिनके लिए समय, धैर्य और कौशल की आवश्यकता होती है) शारीरिक दण्ड आसान व तुरन्त प्रभावित कर अनुशासन बनाए रखने का एक बढ़िया तरीक़ा है।[14] 2011 में किए गए एक अन्य अध्ययन के अनुसार अभिभावकों का अटूट विश्वास परम्परागत मान्यताओं पर है। जिनके अनुसार शारीरिक दण्ड छात्रों के सीखने के स्तर में सुधार, व्यवहार में सुधार के लिए और कक्षा में शिक्षकों की आदरणीय स्थिति को बनाए रखने में मददगार व प्रभावी है।

इन अध्ययनों से यह स्पष्ट होता है कि बिना इन मान्यताओं की जड़ों को कमज़ोर किए पाठशाला के भीतर और बाहर व्याप्त इस समस्या को जड़ से समाप्त कर पाना मुश्किल है। शिक्षा जगत में हम जिस ख़ुशनुमा माहौल की कल्पना करते हैं, वयस्क और बच्चों के जिस सम्बन्ध की कल्पना करते हैं और सीखने के जिन रूपों की कामना करते हैं, उनमें कहीं भी शोषण, हिंसा और दुर्व्यवहार के लिए स्थान नहीं है। उत्पीड़नकारी संस्कृति को जन्म देने वाला कोई भी सोच, विचार, मान्यता या व्यवहार हमारे भविष्य की नींव नहीं बन सकता। इसलिए आज हमारे लिए आवश्यक है कि हम इन मान्यताओं को स्पष्ट तौर पर चिह्नित करते हुए उनके निषेध की ओर बढ़ें। पहले चरण में हमें समझना होगा कि हमारे दुर्व्यवहार की जड़ में हमारी कौन-सी मान्यताएँ हैं। अगले चरण में उन्हें सचेत रूप से चुनौती देनी होगी। तीसरा चरण होगा एक सकारात्मक और सृजनशील माहौल की निर्मिति। यह बदलाव या यह प्रयास किसी क़ानूनी डर या दबाव का नहीं होगा। यह प्रयास हमारा ख़ुद का और भीतरी होगा।

सन्दर्भ

Cameron,M(2006), *'Managing School Discipline and Implications for School Social Worker: A Review of the Literature'* ,NationalAssociation of Social Workers, Vol. 28(4), pp. 219-228.Chanakya.(n.d)."NitiShastra".

Retrieved from http://nitaaiveda.com/All_Scriptures_By_Acharyas/Chanakya_Pandita/NITI_SHASTRA.htm on June 29, 2010.

---

13. Dubanoski, R A, Inaba, M, &Gerkewicz, K (1983), *'Corporal punishment in schools: Myths, problems and alternatives'*, Child Abuse &Neglect, Vol. 7(3), pp. 271-278.

14. Gerald, N K, Augustine, M K, &Ogetange, T B (2012), *'Teachers and Pupils Views on Persistent Use of Corporal Punishment in Managing Discipline in Primary Schools in Starehe Division, Kenya'*,International Journal of Humanities and Social Science, Vol. 2 No. 19.

Kubeka, W M (2004), '*Disciplinary measures at the Moduopo primary school in Tembisa',* M.Tech dissertation, Gauteng Province, South Africa after 1994.

Rajput, J S, &Walia, K (2001), *'Reforms in teacher education',*Journal of Educational Change, Vol. 2, No. 3, pp. 239-256.

Trennert, R A (1989), *'Corporal Punishment and the Politics of Indian Reform',* History of Education Quarterly, 29(4), 595-619.

कंचन शर्मा दिल्ली विश्वविद्यालय के शिक्षा विभाग की शोधार्थी हैं व लेखन कार्य से जुड़ी हैं ।
सम्पर्क : kanchansharmacei@gmail.com